अथर्वन् - अग्नि के पहले आविष्कारक

डॉ. राकेश पटेल

चिल्ड्रन्स युनिवर्सिटी, गांधीनगर

१. प्रस्तावना

वैदिककाल से भारत में ज्ञान-विज्ञान की परम्परा का प्रारम्भ होता है। वेद-संहिताओं से प्रेरणा प्राप्त करके वैदिक काल के ऋषियों ने अनेक शास्त्रों, विज्ञानों एवं वेदांगों और उपवेदों की नींव डाली थी। वैदिक मनीषियों के पुरुषार्थ प्रेरक यथार्थवादने एक ऐसे समाजकी परम्परा स्थापित की जिसके आधार पर आज का विकसित समाज खड़ा हो सका है। 600 ईसवी तक भारत ने संसार के सभी प्रगतिशील देशों का नेतृत्व किया और परस्पर मिल-जुलकर ज्ञान के समस्त अंगों और उपांगों का विकास भी किया। यूनान, मिस्र, अरब, ईरान, मध्य एशियाई देश, चीन और भारत-सभी के पारस्परिक सहयोग इस विकास में सहायक हुए। विज्ञान का विकास जिस प्रकार आज सार्वभौम है, उसी प्रकार ईसा से 3000 वर्ष पूर्व भी था। इस विकास का लिखित सर्वमान्य इतिहास तो हमारे पास नहीं है, फिर भी परम्परा से जो सामग्री और वाङ् मय-साहित्य आज उपलब्ध है, उससे हम अपने पूर्व-इतिहास का कुछ अनुमान लगा सकते हैं। साहित्य और पुरातन सभ्यता के भग्नावशेष—अतीत के अध्ययन के हमारे दो सुलभ साधन हैं।

वैदिक संहिताओं में मंत्रों के प्रारम्भ में परम्परा से जिन ऋषियों की सूची हमें प्राप्त है, हम यह तो नहीं स्वीकार करते कि ऋचायें उनकी कृति थीं — किन्तु उन ऋचाओं के मर्म और रहस्यों का उन ऋषियों ने सर्वप्रथम उद्घाटन किया था। कुछ ऋचाओं का ऋषि अंगिरा है, अथर्वण है, इस अथर्वण और उसके सहयोगियों ने अग्नि का सर्वप्रथम मन्थन किया, और यज्ञों की परम्परा डाली। अग्नि के उपयोग के साथ-साथ अनेक आविष्कारों और अनुसन्धानों का प्रारम्भ हुआ। भारत में (केवल भारत में ही प्राचुर्य से और ईरान में भी कुछ-कुछ) इन्हीं यज्ञस्थलियों में बैठकर प्राचीन मनीषियों ने अनेक विज्ञानों की नींव डाली। ये यज्ञस्थलियाँ हमारी प्राथमिक कार्यशालायें, अनुसन्धानशालायें और वेधशालायें बनीं, जिनके माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में हमने उत्तरोत्तर प्रगति की। यज्ञों के लिए जो पात्र विभिन्न क्रियाओं के निमित्त बने, वे ही हमारी आयुर्वेदशालाओं के उपकरणों में परिवर्तित हो गए, और ये गृहस्थलियों की पाकशाला के भी संभार और पात्र बने। विविध चक्र—चरखा-करघा, रथचक्र, कौलालचक्र, सुदर्शनचक्र इनकी नींव भी वैदिक युग में पड़ी। लम्बाई, चौड़ाई, तौल और काल की मापों का हमने प्रयोग सीखा। क्षुरा, चाकू, सूत और डोरी, और सुश्रुत काल के शल्य-यंत्र, कोल्हू, किसान के हल, और खोदाई के उपकरण और उनके साथ-साथ खनिजों, धातुओं और मृदाओं का प्रयोग हमने सीखा। वनस्पतियों और ओषधियों से हमारा परिचय बढ़ा।

२. अथर्वन्

२.१ अग्नि के पहले आविष्कारक

२.१.१ ४००० ई.पू. या उससे भी पहले

हे अग्नि, ऋषि अथर्वन् ने कमल से मन्थन करके पुरोहित विश्व के सिर के तुम्हारा अविर्भाव किया।[1]—ऋ० 6.16.13

अथर्वन् द्वारा अविर्भूत हे अग्नि, आप सभी स्तवनों के ज्ञाता हैं। आाप विवस्वत् के दूत हैं, यम के प्रिय सुहृद् हैं। यह स्तवन आापकी प्रसन्नता के लिए है। आाप समर्थ हैं।[2] —ऋ० 10.21.5

हे भग्नि, विद्वान् आापका मन्थन करते हैं, जैसा कि अथर्वन् ने किया था। रात्रि के अन्धतमस् से, अनिश्चित रूप से विचरण करने वाले अग्नि का अविर्भाव वे विस्मयान्तिव हुए बिना करते हैं।[3]— ऋ० 6.15.17

अथर्वन्, जिनको अंगिरस् या अथर्वाङ्गिरस भी कहा जाता है, अग्नि के पहले अविष्कारक हैं। अगर मानव को सचमुच ही किसी अविष्कार पर गर्व हो सकता है, तो यह अग्नि का ही अविष्कार है। सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण इस आविष्कार का ठीक-ठीक मूल्यांकन आज

कठिन है, जब अग्नि आज सर्वसाधारण हो चुकी है और उसे पैदा करने के हमारे साधन इतने आसान हैं। किन्तु जरा उन दिनों की बात सोचिए, जब इस धरती पर अग्नि का अविर्भाव नहीं हुआ था और जब उष्मा केवल सूर्य से ही प्राप्त होती थी। अग्नि के पहले अविष्कर्ता के जीवन संबंधी ब्यौरे हमारे पास उपलब्ध नहीं हैं। हम उसके कई नामों से परिचित हैं। इनमें अथर्वन् या अथर्वा उनका निजी नाम है और अग्नि का आविष्कर्ता होने के कारण उनका नाम अंगिरस् भी पड़ गया। उनके नाम पर अग्नि का मन्थन करने वालों की पूरी की पूरी जाति अंगिरस नाम से विख्यात हुई, जिसका सम्बन्ध ऋग्वेद की विभिन्न ऋचाओं से है। आगे चलकर हम उनका विस्तृत उल्लेख करेंगे।

३. प्रोमैथ्यूज़ की कथा

ग्रीक आख्यानों में एक प्रोमथ्यूज़ का उल्लेख मिलता है, जो अग्नि को स्वर्ग से चुराकर मर्त्यलोक में लाया था। प्रोमैथ्यूज़ पुराणों या अख्यानों का नाम है, जब कि अथर्वन् इतिहास पुरुष हैं। यह विश्वास करने का आधार है कि प्रोमैथ्यूज़ के नाम से संबद्ध पुराण-कथा का उद्भव भी भारत से ही हुआ और यही से वह कथा विदेशों में फैली। स्वयं प्रोमैथ्यूज़ शब्द का उद्भव संस्कृत पद 'प्र+मन्थ' से हुआ है, क्योंकि अग्नि का आविर्भाव पहले मन्थ की प्रक्रिया से किया गया था। इस सिलसिले में हम चैम्बर्स विश्वकोष से एक उद्धरए देगे –

> 'अग्नि के उद्भव-उत्पादन की अपेक्षा उसका धार्मिक इतिहास कहीं ज्यादा प्रच्छन्न है, यद्यपि हम देखते हैं कि सर्वत्र इस विषय के चारों और समृद्ध पुराँ-कथाओं का ताना-बाना बुन दिया गया है। प्राकृतिक शक्तियों के सभी प्रमुख उपादानों की भांति ही अग्नि को आरम्भिक दिनों में व्यक्तिस्वरूप मान कर उसकी पूजा की गई तथा व्यक्ति-स्वरूप या साकार मानकर देवत्व का आरोप करने की यदी प्रक्रिया हमें अग्नि के पहले आविष्कर्ता के नाम के साथ ग्रीक प्रोमैथ्यूज़, आरम्भिक आर्यो के 'प्र-मन्थ और उनके चीनी समकक्ष सुय-जिन के साथ संबद्ध मिलती है।'
>
> – चैम्बर्स विश्वकोश: 'फायर'

प्रोमैथ्यूज़ ग्रीक पुराण कथाओं का महान् सांस्कृतिक नायक है, जो टिटन आयापेटस और क्लाईमीन का पुत्र और एटलस मेनोहटस और एवीमैथ्यूज़ का भाई था। हैसोइड ने उसकी कथा इस प्रकार कही है : 'एक बार ज्यूस के शासन के अधीन देवताओं और मनुष्यों के बीज आपस में मैकोन में यह विवाद उठा कि बलि-पशुओं का कौन सा अंश देवताओं को अर्पित किया जाए। प्रोमैथ्यूज़ ने ज्यूस की परीक्षा की दृष्टि से एक बैल को काट कर उसके अंग के सर्वोत्तम अंश गोबर से ढांक कर एक ओर रख दिए, और दूसरी ओर हड्डियों को चर्बी से ढांक कर रख दिया। ज्यूस से चुनाव करने को कहा गया, किन्तु उसने जब यह कपट-जाल देखा, तो उसने मांस पकाने के लिए जरूरी अग्नि से जीवधारियों को वर्जित करके बदला लिया। तब प्रोमैथ्यूज़ ने अग्नि को एक खोखली नलिका में पुरा लिया और उसे उनके पास ले आया। 'ग्रीक प्रोमैथ्यूज' का शब्दार्थ है 'पूर्व दृष्टि' और एपीमथ्यूज़ (प्रोमैथ्यूज़ का विपरीतार्थक शब्द) का अर्थ है 'पश्चात् दृष्टि'।

४. आग की पहली धारणा

इस बात की जांच करना निरर्थक है कि किस तरह से आदमी ने आग का पता लगाया, उसे अपने नियंत्रण में लिया और समुचित साधनों से उसे पैदा करना भी सीखा। उसके प्राकृतिक तत्व और विभिन्न पहलुओं से वह शीघ्र ही परिचित हो गया होगा। ज्वालामुखी से रात के अंधेरे में प्रकाश फैल जाता था और उसकी राख या उसका लावा नीचे मैदानों में दूर-दूर तक फैल जाता था बिजली या उल्का पेड़ से टकराते थे और सारे जंगल में आग लग जाती थी, या किसी दूसरे कम प्रत्यक्ष कारण से कही न कही कुछ कम मात्रा में आग जल उठती थी। हो सकता है कि कुछ समय तक प्रकृति का यह महान् स्वरूप लोगों में भय और शंका की ही भावना जागृत करता रहा हो, लेकिन आदमी में ,तर्कता और सम्मान की भावनाओं के साथ-साथ उतनी ही जिज्ञासा की भावना भी है और चिर-परिचय ने आग के प्रति शीघ्र ही अवज्ञा नहीं तो विश्वास की भावना को तो जन्म दिया ही होगा। यह मान लेना बिलकुल जरूरी नहीं है कि आग की व्यावहारिक खोज एक ही जगह पर और एक ही तरीके से की गई होगी, वस्तुं यह ज्यादा संभव है कि विभिन्न जातियों-प्रजातियों ने आग का ज्ञान तरह-तरह से प्राप्त किया होगा। हम आज भी देखते हैं कि दुनियां के कई हिस्सों में लोग आज भी गरम स्रोतों, नाफथा या पैट्रोल के कुओं और ज्वालामुखी की गम्य क्रेटरों का लाभ उठाते हैं।

५. आदिम तरीके

आग पैदा करने के तरीकों के ब्यौरों में काफी अन्तर है, पर वे ज्यादातर चोट या रगड़ के तरीकों के हेरफेर पर ही आधारित हैं। सर जान लबौक का कहना है कि पत्थर को औजारों के रूप में इस्तेमाल करने के बाद ही जल्दी या देर से आग की खोज भी संभव हुई होगी

क्योंकि पत्थर की छंटाई करने में चिनगारियां पैदा होती है और पत्थर को चमकाने में गरमी पैदा होती है। चोट वाला पहला तरीका अब भी चकमक और लोहे के रूप में जाना जाता है, जिसका प्रयोग सर्वाधिक सुभ्य देशों तक से भी अभी नहीं उठा पाय है। इस तरीके में हेरफेर भी कम ही है और वे महत्वपूर्ण नहीं हैं। अलास्कावासी और एल्यूशियन स्फटिक के दो टुकड़े लेकर उन पर देशी गंधक को अच्छी तरह रगड़ देते हैं, फिर उन पर आपस में तब तक चोट पहुँचाते हैं, जब तक गंधक में आग न लग जाए, फिर लपट से सूखी घास के ढेर को जला लेते हैं, जिस पर कुछ पंख बिखेर दिए जाते हैं। स्फटिक के दो टुकड़ों की जगह एस्किमो एक टुकड़ा स्फटिक का और एक टुकड़ा लोहे के पाइराइट का इस्तेमाल करते हैं। श्री फ्रेडरिक बोयल ने चीनी के टुकड़ों से बांस के साथ तेजी से टकराकर आग पैदा होती हुई देखी है, बैशियन ने यही प्रक्रिया बर्मा में देखी है और वालेस ने टरनेट में।

६. लकड़ी से आम

कोचीन-चीन में बांस के दो टुकड़ों को ही काफी समझा जाता है, क्योंकि ऊपरी पर्त के सिलिका तत्त्व उसे देशी चकमक जैसा ही बना देते है। रगड़ के बहुत तरह के मिलते हैं। सबसे आसान तरीका वह है, जिसे श्री टाइलर ठड़ी और लीक का तरीका बताया है – 'एक तेज़ नुकीली छड़ी को नीचे धरती पड़े लकड़ी के टुकड़े में छड़ी के द्वारा ही बनाई गई लीक में तेज़ी से चलाया जाता है,' हालांकि यह बहुत कुछ लकड़ो की किस्म और चलाने वाले की तैयारी पर निर्भर रहता है। तालिती में श्री डारविन ने एक मूलवासी को कुछ जगा पर में ही आग पैदा करते देखा था, लेकिन वह स्वयं काफी मेहनत के बाद तैयार हुए। यही तरीका न्यूजीलैंड, सैडविच द्वीप, टोंगा, समोआ और रेडाक द्वीप में अपनाया जाता था। चलने वाली छड़ी को आगे-पीछे चलाकर रगड़ने की कुछ अन्य जातियां जमी हुई लकड़ी के टुकड़े में बने एक गोल छेद में इसे तेजीसे घुमाती है और इस प्रक्रिया को श्री टाइलर के शब्दों में आग का बरमा बना देती हैं। यह तरीका आस्ट्रेलिया, कामचटका, सुमात्रा और कैरोलाइन्स में, लोन के वेद्दाहों में, दक्षिण अफ्रीका के एक बड़े हिस्से में, उत्तरी अमेरिका एस्किमों और इंडियनों में, वेस्ट इंडीज और मध्य अमेरिका में और दक्षिण में लान के जलडमरूमध्य तक का में लाया जाता है। प्राचीन मैक्सिकन वासी भी इस तरीके को काम में लाते थे और श्री टाइलर एक मैक्सिकन डुलिपि से इस क्रिया की विचित्र झांकी प्रस्तुत करते हैं - धरती पर घुटनों के हारे आधा झुका हुआ एक आदमी अपनी हथेलियों के बीच से एक लकड़ी को तेजीसे घुमा रहा है। घुमाने का यह सीधा तरीका बहुत कुछ आम तौर पर इस्तेमाल होता था, लेकिन मेहनत कम करने और जल्दी नतीजा निकालने के लिए तरह-तरह के उपाय अपनाएं गए। पाम्पास का कौचो 'लगभग अठारह इंच लम्बी एक लचकीली छड़ी को लेता है, उसके एक सिरे को अपनी छाती से दबा देता है और दूसरे सिरे को एक लकड़ी में बने छेद में डालकर बढ़ई के छेद करने वाले बरमे की तरह बहुत तेजी से घुमाता है।' दूसरे स्थानों पर घुमाने के लिए लकडी के चारों ओर रस्सी या बंटनी लपेट दी जाती है और उसे अदल बदल कर एक दूसरे सिरे से खींचते हैं। बरमे को सीधा रखने के लिए एस्किमो और अन्य लोग एक सिरे को हाथीदांत या हड्डी के सौकेट में रख देते हैं, जिसे वे अपने हाथो में मजबूती से दबाए रहते हैं। उत्तरी अमेरिका के इंडियनों ने इसमें और प्रगति की थी, जो कमान बरमे का सिद्धान्त काम में लाते थे और इरोकुअस के इंडियन तो इससे ज्यादा पम्प-बरमा का ज्यादा प्रवीण तरीका काम में लाते थे। इन साधनों ब्यौरे और आग पैदा करने सम्बन्धी तरह-तरह के विवरणों के लिए टाइलर की पुस्तक 'रिसर्चेज' के महत्वपूर्ण अध्याय को ही देखना चाहिए।

यह बात लोक बहुत समय से जानते हैं कि एक लैंस या अवतल कांच में सूरज की किरणों को संकेन्द्रित किया जा सकता है। एरिस्टोफेन्स 'दि क्लाउड्स' में जलने वाले लैस का जिक्र करते हैं और जहाजों में आग लगाने के लिए दर्पण का उपयोग करने वाले आर्कीमीड्स की कहानी स्कूलों के विद्यार्थी तक जानते हैं। यदि गासिलासो दे ला वेगा का एक प्रमाणपुरुष की तरह विश्वास किया जा सकता है, तो मानना होगा कि पेरू की सूर्य कुमारियां एक बड़े बाजूबन्द में जड़े हुए एक आवतल प्याले से पवित्र-अग्नि जला लेती थीं। चीन में आमतौर पर जलने वाला कांच काम में आता है।

७. आग और संस्कृति

कहा जा सकता है कि मानव संस्कृति का आरम्भ अग्नि से हुआ है और संस्कृति की वृद्धि के अनुपात में ही उसका भी उपयोग बढ़ता गया है। प्रकाश प्राप्त करने की प्रारम्भिक प्रक्रिया में लगने वाले समय को बचाने के लिए या उसको लगातार चालू रखने के सिलसिले में आदिम मानव को आग का माध्यम प्राप्त हो गया, जिसे दिन-रात किसी सार्वजनिक इमारत में जलते रहना चाहिए। मिश्रवासी हर मन्दिर

में आग रखते थे और ग्रीक, लेटिन देशों के लोग और पारसी अपने हर शहर में। नात्शेज, मेक्सिकोवासी, मय और पेरूवासी भी बड़े बड़े पिरामिडों पर अपनी राष्ट्रीय आग जलाते रहे थे। इस अग्नि के रूप में सिनेनौगों (यहूदियों के धार्मिक केन्द्रों), और बाइजेंटाइन और कैथोलिक गिरिजाघरों के 'अखण्ड दीप को' में जीवित देखे जा सकते हैं। रोम का पवित्र केन्द्र 'रेगिया' जो वेस्टा का निवास माना जाता है, एक फव्बारे के पास था, इसलिए उसी स्थान पर दो जरूरी चीजें आग और पानी प्राप्त करने में सुविधा होती थी। सभी नागरिक और राजनैतिक हित प्राइटेनियन में समा गये थे, जो मन्दिर भी था, न्यायाधिकरण भी, टाँउन हाल भी और गप्प-गोष्ठी भी। सभी सार्वजनिक कारबार और अधिकांश निजी काम सामूहिक आग की गर्मी और प्रकाश के सहारे निपटाए जाते थे। यह अचम्भे की बात नहीं कि इस भवन के ध्वजा-पत्थर तक पवित्र माने जाने लगें। आदिम समुदाय हर उस जीज को पवित्र मानते रहे हैं, जो उनके अस्तित्व की साधक होती है और उनका कल्याण करती है, चाहे ये भौतिक आग और पानी जैसी चीजें हों या दूसरी। एस तरह प्राइटेनियन एक धार्मिक संस्था बन गई। फिर अगर हमें पानी की पूजा की जगह आग की पूजा की बात ज्यादा सुनने को मिलती है, तो इसका कारण यह हे कि सब मिल कर आग को प्राप्त करना ज्यादा कठिन था और इसीलिए उसे ज्यादा कीमती माना गया। आग के पहले आविष्कर्ता अथर्वन् के बारे में हम बहुत जानते हैं। युगारम्भ करने वाली उनकी खोज ने समाज में उनको तत्काल बहुत ऊंचा स्थान प्रदान कर दिया। ऋग्वेद और दूसरे वेदों में अथर्वन् शब्द और इस शब्द के ये रूप देखने को मिलते हैं।

ऋग्वेद

अथर्वण : 6. 16. 14. 10. 48. 2

अथर्वणा 10. 21.5

अथर्वणि 8. 9. 7

अथर्वभ्यः 6. 47. 24

अथर्ववत् 6. 12. 17. 10. 87. 12

अथर्वा 1. 80. 16. 83. 5. 6. 16. 13. 10. 92. 10. 10. 120. 9

अथर्वाँण : 11. 11. 2. 10. 14. 6

अथर्ववेद

अथर्व-अङ्गिरसः 10. 7. 20

अथर्वणः 10. 2. 27

अथर्वाणं 16. 8. 16

अथर्वणि 20. 140. 2

अथर्वणे 7. 107. 1

अथर्वन् 5. 11. 2

अथर्ववत् 8. 3. 21

अथर्वा 5. 2. 9. 10. 2. 26. 10. 12. 17. 18. 3. 54. 19. 4. 1. 54. 5. 20 25. 5. 107. 12

अथर्वाणः 4. 37. 1. 10. 6. 20. 11. 6. 13. 18. 1. 58

अथर्वाणंः 4. 37. 1. 10. 6. 20. 11. 6. 13. 18. 1. 58

अथर्वाणं 4. 1. 7. 5. 11. 11. 7. 2. 1

अजुर्वेद

अथर्वण : 11. 33

अथर्वभ्यः 30. 15

अथर्वा 8. 56. 11. 32. 15. 22

अथर्वाएः 19. 50

ऊपर सबसे पहले मैंने जो ऋचा (ऋग्वेद 6116115) अध्याय के शुरू में उद्वत की थी जिसमें अथर्वा को आग का आविष्कर्ता बताया गया था, जिसने कमल दल पर आग निकाली4, वह अजुर्वेद में दो जगह (11. 32. 8. 22) आती है। इनमें से पहली के साथ एक पंक्ति और है, जिसमें बताया गया है कि मन्थन या रगड़ द्वारा आग सबसे पहले अथर्वा ने ही प्राप्त की थी।[5] ग्रिफिथ ने यजुर्वेद के इस मन्त्र का जो अनुवाद किया है, उसका हिन्दी अभिप्राय यह है।

आप पुरीष्य (पशु-पोषक है), विश्व भर के आश्रय हैं, अथर्वन् ने ही हे अग्नि, सबसे पहले आपका मन्थन किया था, हे अग्नि, अथर्वन् ने कमल से मन्थन करके पुरोहित विश्व के सिर से तुम्हारा आविभवि किया। ''यजुर्वेद के श्लोक (8.56) पर ग्रिफिथ की जो टिप्पणी है, उसका हिन्दी भाव यह है : ''अथर्वन् एक प्राचीन ऋषि, जिसने पहले आग प्राप्त की और अग्निदेवता की पूजा शुरू करवाई।'' अथर्वन् या अथर्वा इतिहास पुरुष हैं। वह अथर्ववेद के 1612 मन्त्रों के ऋषि हैं। उनका सम्बन्ध अंगिरस गोत्र से है, इसलिए उन्हें अथर्वांगिरस भी कहा जाता हैं। अथर्वन् द्वारा अग्नि की खोज किए जाने के बाद बहुत से अंगिरस गोत्रीय अग्नि के मन्थनकर्ता के रूप में प्रसिद्ध हुए। लकड़ी से सफलतापूर्वक आग को मन्थन करके निकालना आसान काम न था और ऐसा लगता है कि आग पैदा करने की कला में इन अंगिरसों ने विशेषज्ञता प्राप्त कर ली थी। इनकी बड़ी आवभगत होती थी। यह बात भी बड़ी रोचक और उल्लेखनीय है कि इन अंगिरसों के नाम के ही कारण जलते हुए कोयले का नाम अंगार पड़ा। यद्यपि एक ऋषि या द्रष्टा के रूप में अथर्वन् का सम्बन्ध ऋग्वेद की किसी ऋचा से नहीं है, लेकिन ये बहुत से आंगिरस अनेक ऋचाओं के ऋषि है। अथर्ववेद में अंगिरसों और अथर्व लोकों के उल्लेख मिलते हैं।

अंगिरसः	**मन्त्रों की संख्या**
अंगिरा	85
अंगिरा प्रचेता	6
प्रचेता यम	6
अथर्वा	1612
अथर्वांगिरस्	52
तिरश्चि अंगिरा	5
प्रत्यंगिरस्	32
भृगु अंगिरस्	231
भृगु अथर्वणः	7
योग	2036

नीचे हम एच.एच. विल्सन द्वारा किए गए ऋग्वेद के पहले सूक्त (1.1.6) के उनके अनुवाद पर उनकी टिप्पणियों में से उद्धरण (का अनुवाद) दे रहे हैं। विल्सन का कहना है कि इस ऋचा' 7 में अंगिरस् शब्द का प्रयोग अग्नि के पर्याय के रूप में किया गया है, जबकि उनका नाम मनुस्मृति और सभी पुराणों में एक ऋषि या प्रजापति के रूप में लिया जाता है और उन्हें ब्रह्मा का एक रूप आदिम मानव-पुत्र बताया जाता है। यह वेदों में प्रायः इस अर्थ में एक ऋषि के नाम और एक परिवार या शाखा प्रवर्तक के रूप में लिया गया है। भाष्यकार सायण अंगिरत् के अंगार से सारूप्य के प्रसंग में यास्क का उद्धरण देता है और ऐतरेय ब्राह्मण की एक पंक्ति का उद्धरण दिया जाता है, जिसमें कहा गया है जो अंगार (कोयला) थे, वे अंगिरस् बन गए (ये अंगारा आसंस्तेऽअङ्गिरसस्तेऽभवन्)। महाभारत के वन पर्व में युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर में मार्कण्डेय ने जो कथा कही है उसमें भी कुछ प्रच्छन्न और अस्पष्ट रूप में अंगिरस् का अग्नि के साथ कृत्य में, व्यक्तित्व में नहीं, तादात्म्य स्थापित किया गया है और कहा गया है कि प्राचीनकाल में अग्नि के वन में चले जाने पर और उसके कृत्य बन्द हो जाने पर अंगिरस् बन गए और हव्य को देवताओं तक पहुँचाने लगे। इस प्रश्न से ही संगत एक प्रश्न युधिष्ठिर ने और पूछा है कि अग्नि के एक होने पर भी अनेक रूप कैसे हो जाते है। इसके उत्तर में मार्कण्डेय ने बताया है कि अग्नि ने तपस्यारत होकर अपना काम छोड़ दिया तो मुनि अंगिरस् ने उनका स्थान सम्भाला और जब उन्होंने अग्नि को अपना दायित्व वापस लेने के लिए समझा लिया, तो वह अग्नि के धर्मपुत्र बन गए, इसलिए उनके वंशज आंगिरस भी अग्नि या अग्नियों के वशज माने जाते हैं। धीरे-धीरे अग्नि का सम्बन्ध पूर्णमासी, अमावस्या या खास-खास अवसरों जैसे अश्वमेघ, राजसूय, पाक-यज्ञ, दाह-संस्कार या दाह-अग्नि, प्रायश्चित अग्नि आदि से

हो गया। इस कथा का लक्ष्य शायद अग्नि पूजक संगठन की बात करना है, जो पहले-पहले आदिम और सीधासादा था। फिर यह कथा अङ्गिरस और उसके शिष्यों द्वारा विभिन्न अवसरों पर उनके उपयोग की बात कहती है। इस सबसे स्पष्ट है कि यदि युक्ति संगत व्याख्या की जए तो अथर्वन् ही वह व्यक्ति था जिसने आग का अविष्कार किया। चूंकि उसने रगड़ या लकड़ी के मन्थन के तरीके द्वारा आग प्राप्त की थी, इसलिए लकड़ी के टुकड़े को आग का आवास बताया गया है (आज हम जानते हैं कि मन्थन के समय की जाने वाली यन्त्र क्रिया ही मूलतः उष्मा में बदल जाती है और यह ऊष्मा ही ताप को ज्वलन-अंक तक बढ़ा देती है और तब फिर लकड़ी कार्बन के साथ आक्सीजन के संयोग में अंतर्ग्रस्त रासायनिक ऊर्जा के कारण जलने लगती है)। इसलिए लकड़ी से समृद्ध बनों को अग्नि का घर बताया जाता है (अनुश्रुति है कि अग्नि वन में चली गई) और अंग्निरस् उसे वन (काष्ठ) से लाए। अंथर्वन् अंगिरस गोत्र के ही थे, इसलिए उनको भी अंगिरस कहा जाता है। रगड़कर आग पैदा करने की कला इतनी लोकप्रिय और उपयोगी बन गई कि आग का मन्थन करने वालों की मांग बहुत बढ़ गई। उनकी समग्र जाति को सम्मानपूर्वक आंगिरस कहा जाता था (जैसे हमारे आज के बिजली विशेषज्ञ) आग के चारों और एक नई सभ्यता का विकास हुआ। ये अग्नि-मन्थक बहुत ही शिक्षित व्यक्ति थे। वे पुजारियों का काम करते थे, कवि थे, चिकित्सक थे और वस्तुतः समाज के 'शिष्टजन' थे। आग की खोज से पहले मनुष्य निर्धन और असहाय था। इस असहाय और निराश अवस्था के बीज यजुर्वेद की इस आशापूर्ण वाणी में किसी की आवाज गूँज उठी।[7] स्वर्ग तुम्हारी पीठ पर है, धरती तुम्हारा आधार है, वायु तुम्हारी आत्मा है और समुद्र तुम्हारी योनि है। — यजु० 11. 20

उसने यह सलाह सुनी। आदमी ने न केवल लकड़ा से आग का मन्थन किया, उसने उसे धरती से खोदकर, पत्थरों में से, वज्र (चकमक पत्थर) से भी निकाला। इस प्रसंग में यजुर्वेद के नीचे लिखे मंत्र महत्वपूर्ण हैं :—

जब हम धरती की खोदकर उसकी गोद से अग्नि निकालें तो वह हमारे अनुकूल रहे।[8] — यजु० 11. 21

वहां से हम अग्नि को खोदें, जो देखने में सुन्दर है, और हम उच्चतम आधार तक, स्वर्ग तक चढें।[9] — यजु० 11. 22

जैसा अंगिरस् करते थे, वैसे ही हे पुरीष्य अग्नि, मैं धरती से तुमको खोदकर निकालता हूँ।[10] — यजु० 11. 28

इस प्रकार अंगिरस न केवल लकड़ी से अग्नि पैदा करते थे, बल्कि वे उसे पत्थरों से या धरती से भी निकालते थे। दोनों स्रोत इन दो शब्दों से जुड़े हुए हैं। (एक) अग्निमन्थन या रगड़ द्वारा आग पैदा करना — जब आग लकड़ी से पैदा की जाती थी। (दो) अग्निखनन धरती से आग को खोदकर निकालाना — जब आग पत्थर, सख्त मिट्टी या चकमक पत्थर से पैदा की जाती थी। हम नहीं जानते कि इन मन्त्रों का असली अभिप्राय क्या है, क्योंकि मूल वैदिक शब्दावली के साथ आज हमारा कोई साक्षात् सम्बन्ध नहीं रहा है। व्याख्याकारों ने जगह-जगह पर अनेक कथासूत्रों से इनको जोड़ा है, जो कई जगह पर असली अर्थ से जरा भी संगत नहीं मालूम पड़ते।

८. अथर्वन् और दध्यंच्

विल्सन के अनुवाद पर आधारित ऋग्वेद के इन नीचे लिखे मंत्रो का यह अर्थ देखिए।[11] —ऋग्वेद 6. 16. 12-15

हे दिव्य अग्नि, हमें (धन), सुन्दर, महान् और (सुपठित) सुयोग्य पुत्र प्रदान करो।[12]

ऋषि अथर्वन् ने तुमको कमल से मन्थन करते विश्व के शीर्ष से तुम्हारा आविष्कार किया था।[13]

अथर्वन् के पुत्र ऋषि दघ्यञ्च् ने वृत्र के हन्ता और असुर के पुरों को नष्ट करने वाले इन्द्र को ज्योतित किया।[14]

दस्यु के हन्ता और हर युद्ध में विजय पाने वाले तुमको ऋषि पाथ्य ने ज्योतित किया।[15]

इन मन्त्रों का उद्धरण देते समय यह बात स्पष्ट कर देनी चाहिए कि बहुत से व्याख्याकार सुप्रसिद्ध वैदिक निरुक्तकार यास्क का मत मानते हुए अंगिरस्, अथर्वन्, दध्यञ्च, पांथ्य, भृगु आदि को ऐतिहासिक नामों के रूप में मानने को तैयार नहीं है। उन्होंने इन शब्दों की व्युत्पत्त ही है। महीघ्र शतपथ (6. 4. 2. 2) का एक उद्धरण देकर बताता है कि अथर्वन् का अर्थ प्राण[12] प्राणवायु का जीवन — है और पुष्कर का अर्थ पानी है। उनके मन्त्र १३ का अर्थ किया है कि प्राणवायु ने पानी से अग्नि या प्राणी-अग्नि प्राप्त की। यास्क के अनुसार अंगिरस् का अर्थ संन्यासी है, जिसे प्राण वायु पर पूरा नियन्त्रण प्राप्त होता है। अथर्वन् के पुत्र दध्यञ्च् का उल्लेख बहुत से मन्त्रों में मिलता है।[13]

पुराने जमाने की तरह से उपासना के सभी कार्यों में मनु के पिता अथर्वा या दध्यञ्च् तल्लीन हुए। – ऋ० 1. 80 .16

जब तुमने उनको घोड़े का सिर अर्पित किया तो अथर्वा के पुत्र दध्यञ्च् ने तुमको रहस्य सिखाया। – ऋ० 1. 116. 12

हे अदिव द्वय, तुमने अथर्वन् के पुत्र दध्यञ्च् (के सिर) के स्थान पर घोड़े का सिर लगाया।– ऋ० 2. 17. 22

९. अग्न्याधान्या पवित्र अग्नियों की स्थापना

अग्नाधान (या अग्न्याधेय) संस्कार नये गृहस्थ द्वारा यज्ञ-अग्नियों की स्थापना के लिए किया जाता है और नियमतः कृष्ण प्रतिपदा को मनाया जाता है। कुछ आचार्य पूर्णिमा के दिन भी इस संस्कार को करने की अनुमति देते है, कदाचित् इसलिए कि नवविवाहित दंपती जितनी जल्दी हो सके अपने पवित्र कृत्यों का पालन शुरू कर दें। साथ ही शुक्ल प्रतिपदा और कुछ नक्षत्रों के संयोग पर यह संस्कार करने से गृहस्थ को विशेष लाभ होते हुए बताए गए हैं, यद्यपि शतपथकार इसका ज्यादा समर्थन नहीं करते, बल्कि यह कहते हैं कि सद् गृहस्य जब भी उसे यज्ञ करने की इच्छा हो अपनी अग्नि का आधान कर ले। अगन्याधान के सामान्य संस्कार में, जैसे कि पूर्णिमा और शुक्ल प्रतिपदा के यज्ञ में, दो दिन लगते हैं, इसमें पहले में आरम्भिक संस्कार होते हैं और दूसरे में – सम्बन्धित अष्टमी के दिन – प्रमुख संस्कार करने होते हैं, जिनका आरम्भ रगड़ द्वारा पवित्र अग्नि पैदा करके किया जाता है। (शतपथ 2. 1. 4. 8 आदि, एगलिंग का अनुवाद)।

यजमान चार ऋषियों – ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु और अग्नोघ्र या अग्नीधा का चुनाव करने उनके साथ दो छदानों 'अग्नि गृहों' का निर्माए करने के लिए अग्रसर होता है। उनका ठीक-ठीक स्थल तय करने के लिये अध्वर्यु पहले पश्चिम से पूर्व की और पूर्वी रेखा खींचता है (देखिए 1. 2. 5. 14) और इस पर एक दूसरे से दूर 8, 2 या 12 प्रक्रम या कदम अङ्कित करता है, जौ गार्हपत्य और आहवनीय अग्निस्थल के केन्द्र होते हैं। फिर वह उनकी बाहरी रेखाएं अंकित करता है और दोनों का क्षेत्रफल एक वर्ग अरत्नि होता है एक वर्गाकार और एक गोलाकार। दक्षिणाग्नि या अन्वाहार्यपचन की वेदा अगर जरूरी हो, तो उसका भी क्षेत्रफल तो यही होता है, पर वह अर्द्ध-वर्तुल होती है और गार्हपत्य-अग्नि के दक्षिण की और होती है। गार्हपत्य अग्निकृह पश्चिमें से पूर्व या दक्षिण से उत्तर की और बनाया जाता है और दक्षिण की और एक द्वार होता है, जिससे गार्हपत्य और दक्षिण दोनों अग्नियों को समेटा जा सके। आहवनोय अग्निगृह पश्चिम से पूर्व की और ही बनाया जाता है और पूर्व से एक दरवाजा होता है। इसमें आहवनीय अग्नि होती है और पश्चिम की और वेदी लगी होती है और उसे उत्तर और दक्षिण की और अंशतः ढांक लेती है। दोनों गृह भीतर से एक दूसरे की ओर खुलते हैं और आग के चारों और घूमने के लिए काफी जगह छोड़ दी जाती है।

फिर अध्वर्यु अस्थायी अग्नि का प्रबन्ध करता है, जो या तो रगड़ से पैदा की जाती है या गांव में कुछ निर्दिष्ट सूत्रों से मंगाई जाती है। फिर गार्हपत्य अग्नि गृह की पांच प्रकार से पूजा करके वह उसमें अग्नि को रखता है। सूर्यास्त के समय यजमान आहवनीय अग्निगृह के पूर्व में बैठकर देवताओं और पितरों को अभिमन्त्रित करते हुए कहता है, 'देवताओ, पितरो, देवताओ, मैं यजन कर रहा हूँ, मैं जो भी हूँ, न तो मैं उसको छोडूंगा जिसका मैं पुत्र हूं, हव्य मेरी है, श्रम मेरा है, यज्ञ मेरा है।' फिर वह आहवनीय घर में पूर्व से प्रवेश करता है। उसमें से होकर गार्हपत्य गृह में जाता हैं और आग के पश्चिम की और बैठता है। उसकी पत्नी उसी समय गार्हपत्य गृह में दक्षिण से प्रवेश करती है और उसके दक्षिण की और बैठती है – दौनों के मुख पूर्व की और होते हैं। तब श्रध्यर्यु यजमान को लकड़ी (अरणी) के टुकड़े देता है, जो यथा सम्भव शमी वृक्ष में पैदा हुए अश्वत्थ की होती है। अगले संवेरे इनमें से एक (ऊपर वाली) रगड कर दूसरी (नीचे वाली) के एक छेद में तेजी से बरमाई जाती है और इस तरह पवित्र अग्नि पैदा (या मन्थन) की जाती है। तब यजमान और उसकी पत्नी क्रमशः ऊपरी और नीची लकड़ी अपनी-अपनी गोद में रखते हैं, फिर वे कुछ स्तवन करते हैं और ऋत्विजों और लकडियों की पूजा की जाती है और बाद में लकड़ियों को एक आसन पर रख दिया जाता है। फिर गार्हपत्य गृह में एक बकरा को भेंट में दे देता है। सूर्यास्त के बाद अध्वर्यु कूटे हुए चावल के चार बरतन भरता है–हर एक में तीन मुट्टी चावल होते हैं, और यह मात्रा एक आदमी की खूराक के लिए काफी समझी जाती है। उनको लाल रंगी हुई बैल की खाल पर रखा जाता है (जिसका बालों वाला सिरा ऊपर होता है और गरदन वाला हिस्सा पूर्व की और)। इस ओदन से चारों ऋत्विजों के भोजन के लिए चतुष्प्राश्य (या पाप-पुआ) अस्थायी गार्हपत्य अग्नि के ऊपर तैयार

किया जाता है। जब यह तैयार हो जाता है तो अध्वर्यु पाप (पुए) में एक छेद करता है और उसमें घृत डालता है। फिर वही तीन जलती हुई समिधाएं हाथ में लेता है, उन पर कुछ घी लगाता है और उनको एक के बाद एक करके शतपथ 2. 1. 4. 5 का पाठ करते हुए अग्नि में छोड़ता है। फिर यजमान ऋत्विजों के पैर पखार कर और गन्धमाल्य से उनका यथोचित सम्मान करके उनसे अपना-अपना हिस्सा खाने के लिए कहता है। रात को यजमान और उसकी पत्नी को जागरण करना होता है। रात बीतने पर अध्यर्यु आग को बुझा देता है या यदि दक्षिणाग्नि स्थापित करनी हो तो वह उसे दक्षिण की और ले जाता है और उसे उस समय तक सुरक्षित जगह में रखता हैं, जब तक वह अग्नि तैयार हो जाए। फिर वह लकड़ी की तलवार से वेदी के आर-पार तीन रेखाएं खींचता है और इस संहिता के पहले ब्राह्मण (शत-पथ) में बताई गई रीति से चूल्हा बनाने की और अग्रसर होता है।[15]

---

1. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य बाघतः॥ ऋ० ६.१६.१३
2. अग्निर्जातो अथर्वणा विदद् विश्वानि काव्या। भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे। ऋ० १०.२१.५
3. इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः। यमङ् कूयन्तमानयन्नमूरं श्याब्याभ्यः। – ऋ० ६.१५.१७
4. त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ऋ० 6. 16. 13, यजु. 15. 22
5. पुरीष्योऽसि विश्वम्भराऽअथर्वा त्वा प्रथमो निरमन्थदग्ने। त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत मूर्ध्नो विश्वस्य बाघतः। यजु. 11.32
6. यदङ्गदाशुषे स्वमग्ने भद्र करिष्यसि। तवेत्तत् सत्यमङ्गिरः॥ – ऋ० 1. 1. 6 मनुष्यदग्ने अङ्गिरस्वदगिरो ययातिवत्सदने पर्ववच्छुचे॥ – ऋ० 1. 31. 17

(हे विशुद्ध अग्नि, तुम चलते रहते हो, वेदी सदन में अपने सन्मुख जाओ, जैसे मनु, अंगिरस, ययाति और अन्य लोग पहले जाया करते थे।)तमित् सुहव्यमङ्गिरः।– ऋ० 1. 74. 5

(उस शक्तिशाली अंगिरस को लोग अपने यज्ञ में भाग्य वाला बताते हैं।)अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम्।– ऋ० 1. 75. 2

(हे श्रेष्ठ विद्वान् अग्न, तुम अंगिरसों में प्रधान हो, हम तुम्हारा आह्वान करते है)दिवस्पुत्रा अंगिरसो भवेमाद्रिं रुजेम धनिनं शुचन्तः।– ऋ० 4. 2. 15

(हर अंगिरस द्यौ यः स्वर्ग के पुत्र जगमगाते रहें और समृद्धि-पर्वतों का विभाजन करते रहें)स नो जुषस्व समिधानो अंगिरो... ।– ऋ० 5. 8. 4

(हे अंगिरस् प्रज्वलित होने के बाद आप हम पर अनुग्रह करे) क्या ते अग्ने अङ्गिरः ... । – ऋ० 8. 84. 4

(दिव्य अग्नि, अंगिरस, जो अन्न के पुत्र है)

7. द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थमात्मान्तरिक्षं समुद्रो योनिः। विख्याय चक्षुषा त्वमसि तिष्ठ पृतन्यतः॥ – यजु० 11. 20
8. वयं स्वाय सुमतौ पृथिव्याऽअग्नि खनन्तऽउपस्थेऽअस्याः॥ – यजु० 11. 21
9. ततः खनेमतुप्रतीकमग्नि स्वोरुहाणाऽअधि नाकमुत्तमम्॥ – यजु० 11. 22
10. पृथिव्यां सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरस्वत् खनामि। ज्योतिष्मन्तं त्वाग्ने सुप्रतीकमजलेण भानुना दीद्यतम् सर्व प्रजाभ्योऽहि 17 सन्तं पृथिव्यां सधस्थादग्निं पुरीष्यमङ्गिरखत् खनामः। – यजु० 11. 28
11. स नः पृथुः अवाय्यमच्छा देव विवाससि। बृहदग्ने सुवीर्यम्। खामग्ने पुष्करादव्यथर्वा निरमन्थत। मूर्ध्नो विश्वस्य बाघतः। तमु त्वा दध्यङऋषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्। तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम्। धनञ्जयं रखे रखे। – ऋ० 6. 16. 12–15
12. आपो वै पुष्करं प्राणोऽथर्वा। श.ब्रा. 6. 4. 2. 2.
13. आपौ वै पुष्करं प्राणोऽथर्वा। – श० ब्रा० 6. 4. 2. 2.
14. यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ्धियमत्नत – ऋ० 1. 80. 16 दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वरणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच। – ऋ० 1. 116. 12

    आथर्वणायाश्विना दधीचेऽशव्यं शिरः प्रत्येरयतम्। – ऋ० 1. 117. 22

    यहाँ पर मातरिश्वन् के पुत्र दूसरे दध्यञ्च् का जिक्र है, जो अथर्वन् के पुत्र दध्नञ्च् से भिन्न है।...गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने – ऋ० 10. 48. 2
15. जे. एगलिंग, शतपथ ब्राह्मणं अनुवाद, भाग 1, 274 (1882)

संदर्भग्रंथ

1. वैदिक संहितायें। ऋग्वेद का विल्सन का अनुवाद
2. लगध की वेदांत ज्योतिष (ऋक्-ज्योतिष, और यजुः-ज्योतिष)
3. कृष्ण यजुर्वेद–ए.वी. कीथ का अंग्रेजी अनुवाद
4. मूल आधार (१९८८). 'फाउणुस' औफ साइन्सिज इन एन्शेण इणिया' स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती प्रस्तकाथन प्रकाशन